जगद्धर भट्ट की शिवभक्ति

जगद्धर भट्ट (स्थितिकाल लगभग 1350 ई०) एक ऐसे महाकवि हैं जिन्होंने मात्र दास्य, शान्त या करुण-रस की कवितारचना द्वारा महादेवजी से आत्मनिवेदन करने में ही अपनी सारी कवित्व-शक्ति खर्च कर दी। उनका यह आत्मनिवेदन 39 खण्डों में है। एक को छोड़कर वे सभी खण्ड या स्तोत्र स्तुतिमय हैं। इन सब स्तोत्रों या खण्डों के श्लोकों की संख्या 1409 है। जिस पुस्तक में ये सब निबद्ध हैं उसका नाम है 'स्तुति कुसुमांजलि' (जिसे बम्बई के निर्णयसागर प्रेस ने वर्षों पहले छापा था)। अर्थात् कवि ने प्रत्येक स्तुति या स्तोत्र को एक-एक कुसुम मान करके उनकी अंजलि अपने इष्टदेव शंकर पर चढ़ायी या उनको अर्पण किया है।

जगद्धर भट्ट काश्मीर का रहनेवाला था। उसके पितामह का नाम गौरधर और पिता का नाम रत्नधर था। पितामह शास्त्रों के ज्ञाता तथा शिव के भक्त थे। वे यजुर्वेद के वेद-विलास नामक भाष्य के कर्त्ता थे। रत्नधर महाकवि थे। जगद्धर की बुद्धि बड़ी तीव्र थी तथा सरस्वती की उसपर पूरी कृपा थी। वह निर्मत्सर, सहृदय, मधुरभाषी, विनयशील तथा शास्त्रों का पारगामी विद्वान् था। इन सबके साथ-साथ वह महान् कवि भी था। शास्त्रों के अनुशीलन की प्रवृत्ति तथा कविता-प्रेम उसे विरासत से मिला था।

'स्तुति-कुसुमांजलि' में जगद्धर ने अपने शिव-संबन्धी भक्तिभाव को इतना ऊँचा करके दिखाया है और अपने दास्यभाव का इतना हृदयहारी वर्णन किया है कि जान पड़ता है कि वह शिव का परम भक्त था और समस्त जीवन उन्हीं की स्तुति करके उसने अपनी कवित्व-शक्ति को सार्थक तथा वाणी को पवित्र किया। इसी कारण से और कोई काव्य या ग्रन्थ लिखने की ओर उसकी प्रवृत्ति नहीं हुई। बाल्यकाल से ही जगद्धर का हृदय शंकराराधन की ओर झुक गया था।

कुछ विद्वानों का विचार है कि पुष्पदन्त-रचित 'शिवमहिम्नःस्तोत्र' से बढ़कर कोई स्तोत्र नहीं है। 'स्तोत्र रत्नाकर' आदि में प्रकाशित अन्य भी कितने ही स्तोत्रों के सुन्दर भावों और सरस युक्तियों पर कुछ लोग मुग्ध हो जाते होंगे। शंकराचार्य की 'सौन्दर्य-लहरी' और जगन्नाथ राय की 'गंगालहरी' की भी प्रशंसा अनेक रसिकों के मुख से सुनी जाती है। परन्तु कई प्रमुख विद्वानों की सम्मति में स्तुति-साहित्य में उपर्युक्त 'कुसुमांजलि' से बढ़कर कोई ग्रन्थ नहीं। उसकी नयी-नयी उक्तियाँ, उसके विचित्र-विचित्र उपालम्भ, उसके करुणाक्रन्दन के अनूठे-अनूठे ढंग पढ़नेवाले पर बहुत ही आश्चर्यजनक प्रभाव पैदा करते हैं। अक्षरमैत्री और अनुप्रास के साधन में जगद्धर से शायद ही और कोई संस्कृत-कवि आगे बढ़ गया हो।

यों तो जगद्धर भट्ट की 'स्तुति-कुसुमांजलि' के सभी स्तोत्र सरस एवं मनोहारी हैं, पर उनमें से 'कृपणाक्रन्दन', 'करुणाक्रन्दन' ओर 'दीनाक्रन्दन' नाम के 9, 10, और 11 वें स्तोत्र की प्रशंसा

करना असंभव है क्योंकि उनके लिये उचित शब्द ही नहीं हैं। यहाँ पर हम उसकी कुछ स्तुतियों की नमूने के तौर पर चर्चा करेंगे जिनसे हमें जगद्धर के शिव के प्रति विचारों की झाँकी मिल सके।

जगद्धर अपने 'तमःशमन स्तोत्र'(13वें स्तोत्र) में कहते हैं-

लोकत्रयस्थितिलयोदयकेलिकारः कार्येण यो हरिहर द्रुहिणत्वमेति।
देवः स विश्वजनवाङ्मनसातिवृत्तशक्तिः शिवं दिशतु शश्वदनश्वरं वः।।

(स्तुतिकुस. 13/3)

अर्थात्-जो 'शिव' जीवों के उपकारार्थ तीनों लोकों की स्थिति(पालन), नाश(संहार) और उत्पत्ति-कार्य सम्पन्न करते हुए विष्णु, रुद्र और ब्रह्मारूप को धारण करते हैं तथा जिस 'शिव' की शक्ति समस्त प्राणियों की वाणी और मन से अत्यन्त अगम्य है, वह स्वयंप्रकाश शिव(परमेश्वर) आपलोगों को सर्वदा अक्षय कल्याण(मोक्ष) प्रदान करें।

वे अपने 'दीनाक्रन्दन स्तोत्र' (11 वें स्तोत्र) में कहते हैं-

दुग्धाब्धिदोऽपि पयसः पृषतं वृणोषि दीपं त्रिधामनयनोऽप्युररीकरोषि।
वाचां प्रसूतिरपि मुग्धवचः शृणोषि किं किं करोषि न विनीतजनानुरोधात्।।

(स्तु. कु. 11/14)

अर्थात्-आपकी भक्तवत्सलता की मैं कहाँतक तारीफ करूँ। भक्तों को आप क्षीर-सागरतक दे डालते हैं-बालक उपमन्यु को क्षीर-सागर दे ही डाला। इतनी शक्ति रखने पर भी, पूजन के समय, भक्तजनों का वितीर्ण किया हुआ जलकण भी आप ग्रहण कर लेते हैं। आपकी एक आँख रविरूप, दूसरी सोमरूप और तीसरी अग्निरूप है। इस प्रकार सभी तेजोमय पिण्डों के स्वामी होनेपर भी भक्तजनों का दिया हुआ दीपदान भी आप खुशी से स्वीकार कर लेते हैं। और देखिये, ब्राह्मी वाणियों का उत्पत्ति-स्थान होनेपर भी अपने अल्पज्ञ और मुग्ध भक्तों की स्तुति भी आप सुन लेते हैं। आपसे अधिक भक्तवत्सल और कौन है? देखिये न, अपने विनीतजनों के अनुरोध से न मालूम क्या-क्या करने को आप सदा ही तैयार रहते हैं।

किं भूयसा यदि न ते हृदयङ्गमेयसस्या गृहे वससि किं हृदये मदीये।
सार्धं प्रियेण वसनं तदुपेक्षणं च दुःखावहं हि मरणादपि मानिनीनाम्।।

(स्तु. कुसु. 11/23)

भावार्थ है-अच्छा, और सब बातें जाने दीजिये। एक बात तो बताइये-मेरी वाणी के घर से आप परिचित हैं या नहीं? मेरा हृदय ही उसका घर है और वहीं-उसी घर में-आप चौबीसों घंटे रहते हैं(अर्थात् मैंने आपको अपने हृदय में बिठा रक्खा है)। यह क्यों? आपका यह अन्याय कैसा? जिससे आपको इतनी नफरत, उसी के घर में, उसी के साथ वास! जरा संसार की तरफ आँख

उठाकर तो देखिये। मानिनी महिलाओं के साथ ही यदि उनका प्रेमी रहे और रहकर भी उनकी उपेक्षा करे, तो उनको मर जाने से भी अधिक दुःख होता है या नहीं? फिर क्यों आप मेरी वाणी को इतना दुःसह दुःख देने से विरत नहीं होते? बहुत अच्छा, आपके जी में आवे सो कीजिये।

पापः खलोऽहमिति नार्हसि मां विहातुं किं रक्षया कृतमतेरकुतोभयस्य।
यस्मादसाधुरधमोऽहमपुण्यकर्मा तस्मात्तवास्मि सुतरामनुकम्पनीयः।।

(स्तु. कु. 11/37)

मैं पापी हूँ, मैं दुष्कर्मकारी हूँ–क्या यह समझकर ही आप मेरा परित्याग कर रहे हैं? नहीं, नहीं। ऐसा करना तो आपको उचित नहीं। क्योंकि भयरहित, प्राज्ञ(बुद्धिमान्) और सुकृतकारी(सद्कर्म करनेवाला) को रक्षा से क्या प्रयोजन? रक्षा तो पापियों, भयार्तों और खलों की की जाती है। जो स्वयं ही(अपने सद्कर्मों से) रक्षित हैं उनकी रक्षा नहीं की जाती। रक्षा तो अरक्षितों की ही की जाती है। मुझ महापापी, महाअधम और महाअसाधु की रक्षा आप न करेंगे तो फिर करेंगे किसकी? मैं ही तो आपकी दया–आपके द्वारा की गयी रक्षा का सबसे अधिक अधिकारी हूँ। आप ही कहिये, हूँ या नहीं? हाँ, आप शायद यह कहें कि–

स्वैरेव यद्यपि गतोऽहमधः कुकृत्यैस्तत्रापि नाथ! न तवास्म्यवलेपपात्रम्।
दृप्तः पशुः पतति यः स्वयमन्धकूपे नोपेक्षते तमपि कारुणिको हि लोकः।।

(स्तु. कु. 11/38)

तेरा अधःपतन तो तेरे ही दुष्कर्मों से हुआ है। अपने किये का फल भोग। रक्षा–रक्षा क्यों चिल्लाता है? महाराज! आपका यह कहना ठीक है। मैं अपने ही पापों से जरूर पतित हुआ हूँ? तथापि, ऐसा होने पर भी मैं आपकी अवज्ञा का पात्र नहीं। आपको मेरा उद्धार करना ही चाहिये। आप तो सर्वसमर्थ महादेव हैं। साधारण दयाशीललोग भी तो पतितों की उपेक्षा नहीं करते। यदि कोई विवेकहीन दृप्त(अंहकारी अथवा मदोन्मत्त) पशु स्वयमेव किसी अन्धकूप में गिर जाता है तो कारुणिक मनुष्य उसे भी उस कुँए से निकाल देते हैं। अतएव अपने ही कुकर्मों से पतित मुझ नरपशु पर भी दया करना आपका कर्त्तव्य है। (आप अपने इस कर्त्तव्य से बचना चाहें तो आप पर पक्षपात का दोष लगेगा क्योंकि आपने मेरे सदृश और भी अनेक जनों को तारा है)

सर्वज्ञशम्भुशिवशङ्करविश्वनाथमृत्युञ्जयेश्वरमृडप्रभृतीनि देव!
नामानि तेऽन्यविषये फलवन्ति किन्तु त्वं स्थाणुरेव भगवन्! मयि मन्दभाग्ये।।

(स्तु. कु. 11/83)

भावार्थ है –सर्वज्ञ, शिव, शंकर, मृत्युञ्जय, मृड आदि आपके आठ–दस नाम बड़े ही सुन्दर हैं। वे सभी शुभसूचक हैं। किसी का अर्थ है कल्याणकर्त्ता, किसी का सुखदाता, किसी का

विश्वनाथ, किसी का सर्वज्ञ और किसी का मृत्यु-विजयी। पर ये सब नाम हैं किसके लिये? औरों के लिये; मेरे लिये नहीं। जो सौभाग्यशाली हैं उन्हीं को आप, अपने इन नामों के अनुसार फल देते हैं-किसी को सुख देते हैं, किसी का कल्याण करते हैं, किसी की मृत्यु टाल देते हैं। रहा मैं, सो मुझ अभागे के विषय में आपका एक और ही नाम सार्थक है। वह नाम है, स्थाणु(ठूँठ)! पत्र, पुष्प, फल और शाखाओंतक से रहित सूखे वृक्ष से भी भला कभी किसी को कुछ मिला है? उससे तो छायातक की आशा नहीं। अतएव, आप जब मेरे लिये एकमात्र स्थाणु हो रहे हैं तब मैं आपसे क्या आशा रक्खूँ? यह सब मेरे ही दुर्भाग्य का खेल है।

(उपर्युक्त लेख गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'शिवांक' से लिया गया है।)

❁❁❁❁❁❁

मृताहं यो न जानाति मानवो विनतात्मज।
तेन कार्यममावास्यां श्राद्धं संवंत्सरं तदा।।

हे विनतात्मज जो मनुष्य मरण दिन नहीं जानता है वह अमावस्या में सांवत्सरिक (वार्षिक) श्राद्ध सदा करे।(निर्णयसिन्धुः पृ. 967)

मृताहं यो न जानाति मासं वापि कथञ्चन।
तेन कार्यममायां स्यात् श्राद्धं माघेऽथ मार्गके।। (वही. पृ. 967)

जो मरण दिन और महीने को किसी चिन्ह से भी न जान सके तो इससे उसका श्राद्धकार्य माघ या मार्गशीर्ष की अमावस्या में होता है।

न ज्ञायते मृताहश्चेत्प्रमीते प्रोषिते सति।
मासश्चेत्प्रति विज्ञातस्तद्दर्शे स्यादथाब्दिकम्।।

बृहस्पति ने कहा है-मरण दिन की जानकारी न हो, मरणतिथि के अज्ञान में, और मास के अज्ञान में अमावस्या में आब्दिक (श्राद्ध) करे।

(निर्णयसिन्धुः पृ. 966)